



## शोध आलेख

### डी एम मिश्र की गजलों का एक अध्ययन अपने गिर्द की हाल -खबर लेती गजलें

कमलनयन पाण्डेय  
समालोचक

प्रधान सम्पादक, युगतेवर पत्रिका, सुलतानपुर उ.प्र.

हमारे गिर्द की दुनिया में जो कुछ घट रहा होता है, जो गतिविधियाँ चल रही होती हैं, जो हलचलें - हरकतें संचरित होती रहती हैं, उन सब का समन्वित रूप जब एक रचनाकार के भीतर उतरता है तो उसी रूप में नहीं उतरता जिस रूप में वह बाह्य जगत में दिखता है। देखा जाय तो उन सब का समन्वित रूप व स्थिति रचनाकार के भीतर उतरने की प्रक्रिया में उसके विश्वास, दृष्टिकोण, धारणा, विचार, जीवन -दर्शन के साथ घुलती हुई रूपांतरित होती हुई उतरती है। इससे रचनाकार के भीतर एक रचनात्मक हलचल पैदा होती है। उन रूपों व स्थितियों की विसंगतियाँ तथा विडम्बनाएँ उसके भीतर एक अजीब -सी बेचैनी पैदा करती हैं। कवि बोधा के शब्दों में कहें तो -“ सहते न बनै, कहते न बनै। मन ही मन पीर पिरैबो करै। “एक रचनाकार के भीतर जब उस ‘ पीर ‘का सम्यक परिपाक हो उठता है तो उस रचनाकार की रचना में उसकी सहज व्यंजना हो उठती है। ऐसी रचनाएँ ही हमारे समय, समाज के मनुष्य को प्रभावित करती हैं। उनके भीतर ताप, ऊर्जा और ऊष्मा का संचार करती हैं। उनके भीतर हस्तक्षेपी और प्रतिरोधी मनःस्थिति का सृजन करती हैं। डी एम मिश्र तमाम रचनाकारों के बीच इसी ढर्रे के रचनाकार हैं।

बाजारवादी अपसंस्कृति के इस दौर में सर्वाधिक क्षरण पढ़ने की रचनाओं का हुआ है। यूँ तो सृजन की हर विधा की पुस्तक से पाठक दूर होता जा रहा है, लेकिन इनमें भी सर्वाधिक चिन्ताजनक स्थिति कविता की है। आज कविता का वही रूप समाज में अपनी उपस्थिति बनाये हुए है, जिस रूप की सांस्कृतिक विशेषता, वाचिकता, श्रवणप्रियता, स्मृतिशीलता और त्वरित प्रभाविता की है। निश्चय ही कविता का यह रूप गजल का ही है। कोई सार्थक गजलकार यह नहीं कहता कि ‘मैंने गजल लिखी है’। वह यही कहता है कि मैंने ‘गजल कही है’। इसलिए गजल को मैं ‘आशुकथन ‘ कहता हूँ। यह ‘आशुकथन‘ प्रभावी तब बन जाता है, जब इसके एहसास का गर्भकाल लंबा होता है। अदमगोण्डवी कहते हैं -‘याद रखिये यूँ नहीं कविता में ढलते हैं ‘विचार‘ / होता है परिपाक धीमी आँच पर एहसास का।‘ इस तरह कहना पड़ता है कि सार्थक गजल कहना तलवार की धार पर चलने जैसा है। जिन गजलकारों ने इस धार पर चलकर सिद्धि पायी है, वे गजलकार कालजयी कोटि के गजलकार हैं। ऐसे गजलकार ही डी एम मिश्र के आदर्श हैं। इनकी गजलें इसी साधना पथ पर जा रही हैं। फ़िलहाल मिश्र जी इसी साधना - पथ पर अग्रसर हैं। इनकी गजलें निरन्तर निखार पा रही हैं।



ग़ज़लों के बारे में ऊपर जो कुछ मैंने कहा है डी एम मिश्र की ग़ज़लें उसी भंगिमा की ग़ज़लें हैं। इसकी पुष्टि में इनकी ग़ज़लों के कुछ अश्रूआर यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ--

‘जिसे भी देखिये वो आँख मूँद लेता है  
न जाने क्यों हमीं इतने अधीर होते हैं।’

‘दर्द से रिश्ता कभी टूटा नहीं  
पीर को संवेदना तक ले गया।’

‘मैं न साधक हूँ, न कोई संत हूँ  
शब्द को बस साधना तक ले गया।’

डी एम मिश्र की ग़ज़लों में हमारे समय का स्वर सुनायी पड़ता है। हमारे समकाल के समाज और और जीवन के सवाल, मुद्दे और मसलें उभरते हैं जीवन के वास्तविक बिम्ब झलकते दिखायी पड़ते हैं। आम आदमी के सुख -दुख, हास - परिहास, आशा - निराशा, जय-पराजय, किल्लतें, फजीहतें, किचाहिनें, बेचैनियाँ, सपने, आकांक्षाएँ, इरादें आदि की वास्तविकता को अभिव्यक्त करती हैं, इनकी ग़ज़लें। बाजारवादी शक्तियाँ नव्य तकनीक से सज्जित संचार के ज़रिये जिस तरह से मोहक, मायावी, रंगीन, और स्वपनिल दुनिया परोस रही है, उससे हमारी मानवीय अस्मिता संकट में है। जीवन ताप, ऊर्जा और ऊष्मा से विरत होता जा रहा है। मिश्र जी कहते हैं -

‘ख़्वाब सबके महल बँगले हो गये  
ज़िंदगी के बिंब धुँधले हो गये।’

‘इसी उम्मीद पर तो टूटती है नींद लोगों की  
नयी तारीख़ आये और वो सूरज नया लाये।’

हर सार्थक रचनाकार अपने -अपने समय की अप्रीतिकर स्थितियों से मुठभेड़ लेता हुआ भविष्य का स्वप्न - दर्शन भी रचता है। उसके स्वप्न दर्शन का यह रचाव वायवी नहीं होता। उसकी अपनी यथार्थपरक संगति होती है। जब इस संगति का भंग होता है तो वह स्वप्न भी साकार नहीं हो पाता। यानी उस द्रष्ट स्वप्न का भी भंग हो जाता है। इस स्वप्न -भंग का दंश भी वह रचनाकार भोगता है। सृजन - परम्परा के प्रवाह को पढने से पता चलता है कि हर समय के सार्थक रचनाकार अपने - अपने समय में स्वप्न - दर्शन और स्वप्न -भंग का रचाव करते रहे हैं। डी एम मिश्र ने भी अपनी तरह से इस भंगिमा का रचाव किया है -





‘देखा ज़रूर था कभी मैंने भी एक ख्वाब  
देखा नहीं उस ख्वाब की ताबीर कहाँ है।’

मिश्र जी की गज़लों को पढ़ते हुए यह पता चलता है कि उनकी गज़लों, गज़ल के व्याकरण को साधने के फेर में उलझती नहीं, बल्कि जीवन के रंग और गज़ल के रंग में परस्पर रसायन पैदा करती हैं। नतीजन उनकी गज़लों अपने पाठकों और श्रोताओं के साथ सहज तादात्म्य भी स्थापित कर लेती हैं। उनकी नज़रें अपने गिर्द की दुनिया के जीवन की हलचलों, गतिविधियों की ओर तैनात रहती हैं। वहीं से वे अपनी गज़ल के विषय उठाते हैं। जीवंत शब्द गहते हैं। सम्भवतः इसीलिए उनकी गज़लें अपने गिर्द की दुनिया की हालखबर बनकर उभरती हैं। आम श्रोता - पाठक से बात - बतकही करती हैं। उनसे लुझियाती हैं। उन्हें टोकती, टटोलती, कुरेदती और उकसाती हैं। उन्हे सचेत करने के लिए चिढ़ाती भी हैं

‘विधवा बनकर पेन्शन लेती  
देखा एक सुहागन नारी।’

‘गज़ल कहने चले हो तो तगज़ज़ुल भी ज़रूरी है  
गज़ल में बस मिला दें काफ़िया ऐसा नहीं होता।’

आजादी के बाद जितने भी आन्दोलन हुए, उससे हमारा लोकतंत्र विद्रूप हुआ ही होता गया। निश्चय ही कुछ आन्दोलनों की नीयत पाक- पवित्र भी थी, पर वे आन्दोलन अपनी वास्तविकता में जन - आन्दोलन नहीं बन सके, निश्चय ही इसलिए क्योंकि उन आन्दोलनों में जनता को हाँका भर गया उनकी सक्षम भागीदारी सुनिश्चित नहीं की गयी। नतीजन आन्दोलन के वास्तविक चरित्र को जनता समझ न सकी। यांत्रिक नारे और विक्षिप्त चीख को ही जनता बगावत समझने लगी। यह लोकतंत्र के लिए घातक हैं। मिश्र जी कहते हैं-

‘शौक्रिया कुछ लोग चिल्लाने के आदी हो गये  
पर, यहाँ अफ़वाह फैली लोग बागी हो गये।’

देखा जाय तो लोक के साझा जीवन की आधारभूमि पर ही लोकतंत्र वास्तविक आकार ग्रहण करता है। यदि लोकतांत्रिक संरचना में सामाजिक परस्परता व सरोकार के बरक्स आत्मकेन्द्रीयता की प्रवृत्ति बढ़ती है तो लोकतांत्रिक संरचना छिन्न - भिन्न हो जाती है। अपे सारतत्व में आत्मकेन्द्रयता





परघात का ही नहीं आत्मघात का भी कारण बनती। मिश्र जी इस यथार्थ पर गहरी चिन्ता व्यक्त करते हैं --

फूल तोड़े गये टहनियाँ चुप रहीं  
पेड़ काटा गया, बस इसी बात पर।

डी एम मिश्र उपभोक्तावादी अपसांस्कृतिक प्रसार के दौर में प्रतिरोधहीनता से चिन्हित और व्यथित ज़रूर हैं। पर इनकी तीक्ष्ण दृष्टि जन-समुदाय के भीतर इस अपसांस्कृतिक प्रसार के विरुद्ध पल रहे पतिरोध की आँच को भाँप लेती है --

ये और बात हैं कि कोई बोलता नहीं  
पर, शांत भी नहीं है कोई बेज़बान तक।

गज़लकार डी एम मिश्र इस यथार्थ को समझते हैं कि गाँव में ही भारत की आत्मा का वास होता है। गाँव व किसान के चेहरे पर ही वास्तविक भारत का चेहरा झलकता है। शहर की चमक-दमक की ओर भागती भीड़ के पीछे वे भागते नहीं। अंधदौड़ में शामिल नहीं होते। उन्हें अपनी स्थानीयता से आत्मिक प्रेम है। वे जानते हैं कि इसी स्थानीयता का विस्तार ही तो यह दुनिया है। इसी स्थानीयता को वे संरक्षित करना चाहते हैं। इसी को संस्कारित करना चाहते हैं -

'नम मिट्टी पत्थर हो जाये ऐसा कभी न हो  
मेरा गाँव, शहर हो जाये ऐसा कभी न हो।'

'ये मेरे गाँव का पोखर यहीं भरे, सूखे  
बड़े शहरों का समन्दर कभी नहीं देखा।'

'बढ़ा जब ज़िंदगी का कारवाँ मैं रह गया पीछे  
मगर पछता के अपने आप को कोसा नहीं मैंने।'

'सितारों के नगर में चाहता तो मैं भी बस जाता  
पर, अपने गाँव से नाता कभी तोड़ा नहीं मैंने।'

कुल मिलाकर डी एम मिश्र की गज़लों हमारे समय, समाज और जीवन की जड़ता को तोड़ने का रचनात्मक उपक्रम तय करती हैं। अपने समय की अप्रीतिकर स्थितियों, अनुदात्ताओं और विद्रूपताओं के विरुद्ध खड़ी होती हैं, शोषक सत्ता के





विरुद्ध शोषित जनता की पक्षधरता में खड़ी होती है। तटस्थता, ठहराव और उदासीनता को तोड़ती है और उनके बीच हलचल पैदा करती है। हर रचनाकार का अपना - अपना दायरा होता है। मिश्र जी अपने दायरे में रचनारत होने के साथ ही अपने दायरे को तोड़ते भी हैं। वे निरन्तर निखार की ओर हैं। मेरी शुभकामनाएँ उनके साथ हैं।

कमलनयन पाण्डेय, 1587 / 1, उदय प्रताप कालोनी, बढैयावीर, सिविल लाइन नं02, सुलतानपुर - 225001 उ0प्र0

